

5

वेदान्त में प्रमाण प्रत्यक्ष खण्ड में प्रमा



ध्यान दें:

भारत में आस्तिक तथा नास्तिक भेद से दर्शनों के विभाग किये गये हैं। आस्तिक दर्शनों में वेदान्त दर्शन अन्यतम है। वेदान्त मत में छः आस्तिक प्रमाण होते हैं। इस पाठ में दर्शन, दर्शन प्रयोजन, दर्शन भेद तथा दर्शन भेद से प्रमाण भेद, इत्यादि के विषय में समास विधि से दिये गये हैं। लेकिन वेदान्त दर्शन में अद्वैतवेदान्त विशिष्टाद्वैत वेदान्त, द्वैत वेदान्त इत्यादि विभाग दिये गये हैं। फिर भी वेदान्त दर्शन इस प्रकार कहने पर अद्वैत वेदान्त को ही यहाँ पर मानकर अद्वैत वेदान्त के मत में जो प्रमाण है उनका यहाँ पर वर्णन किया जा रहा है। इसलिए ये प्रमाण अद्वैत वेदान्त दर्शन सम्मत हैं ऐसा मानना चाहिए।



उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- दर्शन क्या है इस विषय में ज्ञान प्राप्ति में;
- दर्शनों के भेदों को जानने में;
- दर्शन के प्रयोजनों की समझ विकसित करने में;
- पुरुषार्थों को जानकर अपना जीवन व्यतीत करने लिए ज्ञान प्राप्त करने में;
- प्रमाणों के पदार्थों को जानकर प्रमाण की महिमा को समझ सकेंगे;
- अद्वैत वेदान्त के मत में प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है यह जान पाने में;

5.1) दर्शन

दृशिर प्रेक्षणे इस् धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से दर्शन शब्द निष्पादित होता है। देखना इसका तात्पर्य केवल आँखों के द्वारा देखना ही नहीं है अपितु सामान्य ज्ञान करना है। अर्थात् जिस भी ज्ञान का बोध बुद्धि प्रमाण प्रमित इन सभी से होता है वह देखना कहलाता है।

धातु का अर्थ फल तथा व्यापार दोनों ही होता है। दृश् धातु का अर्थ है ज्ञानरूपी फल तथा तदनुकूल व्यापार, वह व्यापार फलानुकूल हो अर्थात् फलजनक हो। यहाँ पर अनुकूलत्व ही जनकत्व होता

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रमा



ध्यान दें:

है। अतः फल का व्यापार में अनुकूलत्व सम्बन्ध से ही अन्वय करना चाहिए।

कृत्यलुटो बहुलम् इस सूत्र से ल्युट् प्रत्यय बाहुल्य अर्थ में होता है। जिससे दर्शन शब्द के विभिन्न अर्थ संभव होते हैं। इस प्रकार से दर्शन की ये व्युत्पत्तियाँ होती हैं।

जिसके द्वारा देखा जाए दर्शन शब्द करण अर्थ में व्युत्पन्न होता है। तब ज्ञानानुकूल व्यापार करण होता है इस प्रकार का अर्थ भी प्राप्त होता है। ज्ञान जनक व्यापार का करण शास्त्र होता है ज्ञान के करण सुप्रसिद्ध प्रमाण भी होते हैं। इसलिए दर्शन तो शास्त्र प्रमाण को मानते हैं।

देखता है इस प्रकार कर्तार्थक व्युत्पन्न दर्शन शब्द होता है। अर्थात् कर्ता अर्थ में ल्युट् प्रत्यय हुआ है। तब ज्ञानानुकूलव्यापारवान दर्शन इस प्रकार का अर्थ प्राप्त होता है, ज्ञानजनक व्यापार का आश्रय तु ज्ञाता अर्थात् प्रमाता है।

जो देखा जाए वह दर्शन है इस प्रकार कर्म अर्थ में भी यह शब्द व्युत्पन्न होता है। तब ज्ञानानुकूलव्यापारजन्य ज्ञान का विषय दर्शन होता है। ज्ञान का विषय प्रमेय भी होता है।

जिससे देखा वह दर्शन है यहाँ पर भाव व्युत्पन्न दर्शन शब्द है। ज्ञानानुकूल व्यापारजन्य ज्ञान इस प्रकार का अर्थ प्राप्त होता है। यह ज्ञान प्रमा ही है।

इस प्रकार से दर्शन शब्द की चार प्रकार से व्युत्पत्ति संभव होती है। इस प्रकार से दर्शन शब्द का प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय तथा प्रमा ये चार अर्थ होते हैं।

जब भारतीय दर्शन में नास्तिक दर्शन तथा आस्तिक दर्शन इस शब्द का प्रयोग होता है तब दर्शन पढ़ता हूँ अथवा दर्शन पढ़ाता हूँ इत्यादि में भी तब दर्शन शब्द का अर्थ प्रमाण अथवा शास्त्र ही होता है।

शास्त्रम्-

शास्त्र क्या है? तब कहते हैं शासु अनुशिष्टौ इस धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय के संयोग से शास्त्रशब्द व्युत्पन्न होता है। विधि तथा निषेध के भेद से अनुशासन दो प्रकार का होता है। इसलिए उक्ति प्रसिद्ध है-

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।

पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते॥

मनुष्य की नित्य की प्रवृत्ति के लिए जो उपदेश देते हैं तथा अनित्य निवृत्ति के उपदेश देते हैं वह शास्त्र कहलाते हैं।

2.2) दर्शन

भारत में आस्तिक तथा नास्तिक भेद से दर्शनों के दो प्रकार के विभाग किये गये हैं। आस्तिकत्व क्या है? तथा नास्तिकत्व क्या है? इस प्रकार कहने पर कहते हैं कि जो वेद के प्रमाण को अङ्गीकृत करते हैं वे दर्शन आस्तिक दर्शन कहलाते हैं तथा जो वेद के प्रमाण को नहीं मानते हैं वे नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। अर्थात् वेद प्रतिपाद्य को स्वीकार करते हैं उसका समर्थन करते हैं तथा विधान करते हैं वे आस्तिक दर्शन हैं, और जो वेद प्रतिपाद्य का विरोध करते हैं वे नास्तिक दर्शन होते हैं। मनु मुनि के अनुसार नास्तिक वेद निन्दक होते हैं।

नास्तिक दर्शन तीन प्रकार के होते हैं तथा **आस्तिक दर्शन** छः प्रकार के होते हैं।

नास्तिक दर्शन- 1) चार्वाकदर्शनम् 2) जैनदर्शनम् 3) बौद्धदर्शनम्। बौद्धदर्शन के भी चार भेद हैं जो क्रम से इस प्रकार है 1) माध्यमिकदर्शनम् 2) योगाचारदर्शनम् 3) सौत्रान्तिकदर्शनम् 4) वैभाषिकदर्शनम् इति। इस प्रकार सभी को मिलाकर नास्तिक दर्शन छः प्रकार के होते हैं।

छः आस्तिक दर्शन इस प्रकार से है - 1) न्यायदर्शनम् 2) वैशेषिकदर्शनम् 3) सांख्यदर्शनम् 4) योगदर्शनम् 5) पूर्वमीमांसादर्शनम् 6) उत्तरमीमांसादर्शनम् इति। यहाँ पर उत्तर मीमांसा दर्शन से वेदान्तदर्शन को समझना चाहिए।

5.3) प्रमाण

कौन-से दर्शन कितने प्रमाणों को स्वीकार करते हैं, तो संक्षेप में कहते हैं। इसके लिए कारिका है प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणाद-सुगतौ पुनः। (आर्हताः प्रत्यक्षमनुमानं चेति)

अनुमानं च तच्चापि साङ्ख्याः शब्दं च ते उभे।

न्यायैकदेशिनोऽप्येवमुपमानं च केचन।

अर्थापत्त्या सहैतानि चत्वार्याह प्रभाकरः॥ (माध्वाः प्रत्यक्षं शब्दश्चेति)

अभावषष्ठान्येतानि भट्टा वेदान्तिनस्तथा।

संभवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिका जगुः॥

सरलार्थ चार्वाक केवल प्रत्यक्ष इस एक प्रमाण को ही मानते हैं, कणाद वैशेषिक बौद्ध शाक्य आर्हत तथा जैन प्रत्यक्ष तथा अनुमान इन दोनों प्रमाणों को मानते हैं। सांख्य तथा नैयायिक प्रत्यक्ष और अनुमान तथा शब्द इन तीनों प्रमाणों को मानते हैं। कुछ नैयायिक तो उपमान को भी मानते हैं। इस प्रकार से नैयायिक चार प्रमाण को स्वीकार करते हैं इस प्रकार की प्रसिद्धि है। मीमांसक एकदेशि प्रभाकर प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति इस प्रकार से पाँच प्रमाणों को स्वीकार करते हैं। भट्ट मीमांसक तथा वेदान्ति प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि इस प्रकार से छः प्रमाणों को मानते हैं और पौराणिक तो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव, ऐतिह्य इस प्रकार से आठ प्रमाणों को स्वीकार करते हैं।



पाठगत प्रश्न 5.1

- दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति को लिखिए?
- बौद्धमत में यह प्रमाण नहीं है?
 - अनुमानम्
 - प्रत्यक्षम्
 - शब्दः
 - इनमें से कोई भी नहीं।
- शब्द प्रमाण को ये नहीं मानते हैं?
 - पौराणिक
 - वेदान्ति
 - भट्ट
 - बौद्ध
- अनुमान प्रमाण को ये नहीं मानते हैं?
 - चार्वाक
 - वेदान्ति
 - भट्ट
 - बौद्ध



ध्यान दें:

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रमा



ध्यान दें:

5. अर्थापत्ति प्रमाण को ये नहीं मानते हैं?
 - (1) पौराणिक
 - (2) वेदान्ति
 - (3) भाट्ट
 - (4) नैयायिक
6. प्रत्यक्ष तथा अनुमान ये दो ही प्रमाण हैं ऐसा कौन नहीं कहते हैं?
 - (1) चार्वाक
 - (2) वैशेषिक
 - (3) आर्हत
 - (4) नैयायिक
7. स्तम्भ में स्थितों को परस्पर मिलाइये।

<p>(क) - स्तम्भ:</p> <ol style="list-style-type: none"> (1) प्रमाणम् (2) प्रमाता (3) प्रमेय (4) प्रमा (5) आस्तिकदर्शनम् (6) नास्तिकदर्शनम् 	<p>(ख) - स्तम्भ:</p> <ol style="list-style-type: none"> (क) दृश्-धातोः भावे ल्युट् (ख) दृश्-धातोः कर्मणि ल्युट् (ग) दृश्-धातोः करणे ल्युट् (घ) दृश्-धातोः कर्तरि ल्युट् (ङ) वेदस्य प्रामाण्यं नाभिमतम् (च) वेदस्य प्रामाण्यम् अभिमतम्
--	---

5.4) पुरुषार्थ

सभी प्राणी इष्ट की प्राप्ति की इच्छा करते हैं तथा अनिष्ट को दूर करने की इच्छा करते हैं। इष्ट क्या है तथा अनिष्ट क्या है? सुख इष्ट है तथा दुःख अनिष्ट है। सुख का उपाय इष्ट है तथा दुःख का उपाय अनिष्ट है।

सभी प्राणी सुख को प्राप्त करने के लिए तथा दुःख को दूर करने के लिए प्रयास करते हैं। सुख दो प्रकार का होता है नित्य तथा अनित्य। नित्य सुख आत्मसुख होता है वह जन्य नहीं होता है। वह सुख किसी कारण से उत्पन्न नहीं होता है इसलिए वह सुख तो आत्मस्वभाव ही होता है। अनित्य सुख जन्यसुख होता है उसका कोई कारण होता है। अनित्यसुख का कारण ही धर्म होता है। धर्म के विना सुख नहीं होता है। और धर्म भी जन्य होता है। वेद विहित यागादि धर्म कहलाते हैं। उस याग से उत्पन्न पुण्यादि अदृष्ट विशेष कोई धर्म ही होता है। धर्म अन्तःकरण में विद्यमान कोई गुण विशेष होता है। अथवा स्वर्गादि ही धर्म कहे जाते हैं।

दुःख का कोई कारण तो होना ही चाहिए। सुख तथा दुःख कारण के विना उत्पन्न नहीं होते हैं सुख का कारण है कि जिससे असन्दिग्ध ज्ञान की आवश्यकता होती है। उससे जो सुख इष्ट हो उस का जो साधन हो उसमें निष्ठा होनी चाहिए। कुछ सुख के कितने भेद होते हैं। वह भी जानना चाहिए। ऐसे 'इदं मदिष्टसाधनम्' इस ज्ञान से प्रवृत्ति के प्रति कारण होता है।

जिससे अर्थ किया जाए वह अर्थ कहलाता है। पुरुष का अर्थ ही पुरुषार्थ कहलाता है। अथवा पुरुष के द्वारा जो प्राप्त किया जाए वह पुरुषार्थ कहलाता है। अर्थात् पुरुष नर हो या नारी जो कुछ भी जो भी चाहता है अथवा इच्छा करता है वह पुरुषार्थ कहलाता है।

पुरुष सुख के लिए ही प्रयास करता है। इसलिए सुख ही सभी साधारण प्राणियों का पुरुषार्थ कहलाता है। सुख के भी प्रकार होते हैं। इसलिए पुरुषार्थ के भी प्रकार भी होते हैं। नित्य सुख ही मोक्ष

कहलाता है। अनित्य सुख ही काम कहलाता है। काम का कारण ही धर्म कहलाता है। तथा धर्म का साधन ही अर्थ कहलाता है। अर्थ ही धर्म की सामग्री धनादि होते हैं। इस प्रकार से धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, चार पुरुषार्थ वैदिक संस्कृति में प्रसिद्ध हैं। उनमें काम तथा मोक्ष मुख्य है। काम का साक्षात् कारण धर्म होता है। धर्म का प्रयोजक अर्थ है। कामलाभ के लिए ही धर्म अर्थ की सेवा की जाती है और किसी प्रकार से नहीं। इसलिए धर्म तथा अर्थ गौण हो जाते हैं। मुख्य काम मोक्ष में भी मोक्ष नित्य है। इसलिए मोक्ष ही परमपुरुषार्थ है। अर्थ अनित्य है यह प्रत्यक्ष से जाना जाता है। इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला सुख क्षणिक है वह भी अनित्य ही है ऐसा अनुभव के द्वारा सिद्ध है। अनित्य सुख का कारण धर्म भी अनित्य ही है। कारण के सत्व होने से कार्य का अभाव नहीं होता है।



ध्यान दें:

वेदान्त में श्रुति तथा तदनुकूल युक्ति और अनुभव ये तीनों सदा प्रमाण के द्वारा सिद्ध होते हैं।

कामादि की अनित्यता में श्रुति प्रमाण होती है। वह इस प्रकार से है - एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते।

(अर्थ- इस संसार में धर्म तथा अधर्म कर्म के द्वारा निर्मित देखे जाते हैं तथा घट आदि भी नष्ट होते हैं उसी प्रकार लोकान्तर में भी पुण्यनिर्मित लोक स्वर्गादि भी नष्ट होते हैं।)

इसलिए स्मृतियों में कहा जाता है- ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। (गीता 9.21)।

(अर्थ- जो लोग पुण्यों को प्राप्त करके स्वर्ग जाते हैं वे उस विशाल विस्तीर्ण स्वर्गलोक का भोग करके जब उनके वह भोग जनक पुण्य क्षीण होते हैं तब पुनः वे मर्त्य लोक में जन्म ग्रहण करते हैं।)

यहाँ इस गीता की उक्ति ने यह स्पष्ट किया है कि पुण्य क्षीण होते हैं। अर्थात् धर्म पुण्य अनित्य है। इसलिए उससे उत्पन्न सुख तथा काम भी अनित्य ही है।

एक युक्ति कही जाती है जो किया जाए वह नित्य है यह नियम दृष्ट तथा अनुमान दोनों से ही सिद्ध है। धर्म कर्मजन्य होता है इसलिए अनित्य है। काम धर्मजन्य होता है इसलिए वह भी अनित्य है। हमें धर्म ज्ञात कैसे होता है यह जैमिनी मुनि द्वारा प्रणीत धर्ममिमांसा शास्त्र में विस्तार पूर्वक बताया गया है। जिसमें सर्वप्रथम सूत्र है अथातो धर्म जिज्ञासा।

इस प्रकार से यह सिद्ध होता है कि मोक्ष परमपुरुषार्थ है जो नित्य भी है। मोक्ष ब्रह्मज्ञान से ही होता है ऐसा अद्वैतवेदान्त का सिद्धान्त है। इसलिए ब्रह्म क्या है? तथा उसका ज्ञान क्या है? तथा उसके लाभ के प्रमाण क्या है? इस प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उसकी निवृत्ति के लिए अद्वैतवेदान्त मतानुकूल प्रमाणों का निरूपण करता है। ये प्रमाण ही इस पाठ का विषय है।



पाठगत प्रश्न 5.2

1. सभी प्राणी क्या चाहते हैं?
2. सभी प्राणी क्या नहीं चाहते हैं?
3. सुख कितने प्रकार का होता है? और वह क्या है?
4. क्या सुख नित्य होता है?



ध्यान दें:

5. क्या सुख अनित्य होता है?
6. अनित्य सुख का कारण क्या है?
7. दुःख का कारण क्या है?
8. प्रवृत्ति के प्रति ज्ञान का कौन-सा कारण होता है?
9. पुरुषार्थ पद की व्युत्पत्ति क्या है?
10. पुरुषार्थ कितने होते हैं? तथा कौन-कौन से हैं?
11. गौण तथा मुख्य भेद से पुरुषार्थों को लिखिए।
12. मोक्ष परमपुरुषार्थ का क्या हेतु है।
13. मोक्ष किससे होता है?

5.5) ज्ञान

5.5.1) प्रस्तुति

ज्ञान के बोध, प्रमा, प्रमिति, बुद्धि, प्रतीति इस प्रकार के प्रायः समानार्थक शब्द होते हैं।

लौकिक व्यवहार में 'यह ज्ञानी है' 'वह बहुत जानता है' 'वह बुद्धिमान है' इत्यादि वाक्य प्रयुक्त किये जाते हैं। 'यह अधिक जानता है' इस वाक्य में ज्ञान शब्द का जो अर्थ है व शास्त्र में अभिप्रेत नहीं है। शास्त्र में भले ही बहुत ज्ञान के लक्षण किये हैं फिर भी सामान्य रूप से ज्ञान क्या है यह जानना चाहिए। प्रमाणादि विषयों को पढ़ने के लिए तथा उनके ज्ञान के लिए बहुत से परिभाषिक शब्द प्रयुक्त होते हैं। उनके विषय में स्पष्ट ज्ञान अपेक्षित होता है। अतः अब इसके बाद में उन सब को प्रस्तुत करते हैं।

5.5.2) ज्ञान

सबसे पहले ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है इस प्रक्रिया को प्रदर्शित करते हैं।

मेरे सामने घट है। दोनों आँखों से घट को देख रहा हूँ। तब तक अन्यत्र स्थित पट को नहीं देख रहा हूँ। जब अन्यत्र स्थित पट को देखता हूँ तब पूर्व में स्थित घट को अथवा अन्यत्र स्थित घट को नहीं देखता हूँ। इस प्रकार एक पदार्थ का जब ज्ञान होता है तब अन्य पदार्थ का उस क्षण में भान नहीं होता है। पट देखने के बाद फिर से जब उसी घट को देखता हूँ तो उत्तर क्षण में घट का ज्ञान होने योग्य होता है। लेकिन एककाल में इन्द्रिय का जिस पदार्थ के द्वारा सम्बन्ध होता है उसका ही भान होता है, न की अन्य का। उस क्षण में उत्पन्न भान ही बोध तथा ज्ञान कहलाता है। जब घट देखता हूँ तब घट ज्ञान अर्थात् घटविषयक ज्ञान होता है। तब पटज्ञान नहीं होता है। जब पट को देखता तब पट विषयक ज्ञान होता है। लेकिन तब घट का ज्ञान नहीं होता है भले ही पूर्व के क्षण में घट का ज्ञान था और वर्तमान क्षण में पट का ज्ञान है पर घट का ज्ञान नहीं है, वर्तमान क्षण में जो भान होता है वही ज्ञान कहलाता है। पूर्वक्षण में एक ज्ञान उत्पन्न हुआ तथा दूसरे क्षण में अर्थात् वर्तमान क्षण में द्वितीय ज्ञान उत्पन्न हुआ। परन्तु पूर्व क्षण का ज्ञान वर्तमान क्षण में भी है ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसलिए घट दर्शन के बाद जब पट देखता हूँ तब घट तथा पट दोनों का ज्ञान हो तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। निश्चित रूप से यदि बहुत क्षण तक एक ही विषय को देखता हूँ। यदि घट को ही निरन्तर कुछ काल तक देखता हूँ तब उस कालांश

में सभी क्षणों में विद्यमान ज्ञान एक ही कहलाता है। एक ही ज्ञान निरन्तर होता है। अर्थात् प्रतिक्षण भिन्न-भिन्न विषयों का ज्ञान होता है तो प्रतिक्षण का ज्ञान भिन्न ही कहलाता है। पूर्व क्षण में उत्पन्न ज्ञान को वर्तमान क्षण में भी ज्ञान रूप से ग्रहण करते हैं। जैसे एक पुस्तक पढ़ी उसके बाद दूसरी पुस्तक को पढ़ते हैं अथवा घट को देखते हैं। तब प्रथम पुस्तक का ज्ञान उसको है इसे शास्त्रीय शैली में तो नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वर्तमान क्षण में तो उसको उसके अन्दर वर्तमान ज्ञान ही रहता है।

5.5.3) अनुभव संस्कार और संस्कृति

ज्ञान का जो विषय है वह अर्थ, पदार्थ, ज्ञेय, ज्ञातव्य तथा प्रमेय कहलाता है। जब विषय का ज्ञान होता है तब कुछ अपेक्षाबुद्धि भी होती है। कभी कभी अपेक्षा बुद्धि भी होती है। जैसे नगरादि में जाते समय बहुत लोगों को, घरों को, वृक्षादि को देखते हैं। परन्तु उन सभी का वास्तविक रूप से दर्शन हो ऐसा हमारा मनोभान नहीं होता है। अर्थात् उनका दर्शन हो चाहे नहीं हो इसमें हमारा मनोभाव उदासीन रहता है। अर्थात् दर्शन की अपेक्षा रहती है परन्तु जब किसी भवन किला दृश्य आदि को देखने के लिए जाते हैं तब वह अवधान आवश्यक होता है। और आते समय कहते भी हैं मैंने दुर्ग देखा है। किले में राजा का महल दृष्टवान्, मन्दिर देखा है। मन्दिर बहुत ही प्राचीन था इत्यादि। परन्तु मार्ग में जिन लोगों को वृक्षों को देखा था उनका वापस आते समय स्मरण नहीं होता है। वापस आते समय जब स्मरण होता है तब न तो वह दुर्ग रहता है और न मन्दिर रहता है फिर भी तद्विषय स्मरण होता है। हम वहाँ देखे हुए बहुत सारे दृश्यों का वर्णन करते हैं। तो पूर्व में देखे गये का कोई चिह्न अथवा कोई संस्कार अन्तःकरण में उत्पन्न होता है। वह चिह्न अथवा संस्कार ही वापस आते समय स्मृति में कारण बनता है। जब दुर्ग दर्शन होता है और दुर्ग दर्शन जो जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह सभी ज्ञान अनुभव कहलाता है। यह अनुभव ही अपेक्षा बुद्धि के कारण अन्तःकरण में कोई चिह्न अथवा संस्कार करता है। वह संस्कार ही उत्पन्न होकर स्मृति को जन्मदेता है तथा उत्पन्न करता है। संस्कार के उद्बोध के लिए अथवा जागने के लिए कोई कारण तो आवश्यक होगा ही। जैसे यात्रा पूरी करके आने के बाद मेरे मित्र मुझसे पूछते हैं, क्या क्या देखा है? तब मैं मित्रों को देखी वस्तुओं का वर्णन सुनाता हूँ। अर्थात् मैं स्मरण कर कर के कहता हूँ। यहाँ मित्रों के प्रश्न करने के कारण संस्कार उत्पन्न होते हैं, वे संस्कार स्मृति को उत्पन्न करते हैं।

इस प्रकार से अपेक्षा बुद्धि के साथ किया गया अनुभव संस्कार को जन्म देता है। वह संस्कार ही उद्बोधवश स्मृति को जन्म देता है।

इस प्रकार ज्ञान दो प्रकार का होता है- अनुभव तथा स्मृति।

जब पहले देखे मन्दिर का मैंने अभी स्मरण किया तब यह ज्ञान स्मृति कहलाया। स्मृति से भिन्न ज्ञान ही अनुभव होता है।

जो यह जानता है वह ज्ञाता कहलता है, जिसकी प्रमा होती है वह प्रमाता कहलाता है, ज्ञाता ही प्रमाता है।

संसार में 'यह व्यक्ति ज्ञानी है' इस प्रकार से लोग कहते हैं। उसका अर्थ यह है कि यह व्यक्ति बहुत विषयों को जान लिया है। जब उसने जाना तब उस ज्ञान ने उसके अन्तःकरण में संस्कार उत्पन्न किये। जब वह इच्छा करता है तब वह संस्कारों की सहायता से बहुत विषयों का स्मरण कर सकता है। इसलिए हर व्यक्ति ज्ञानी है इस प्रकार से व्यवहार होता है। लेकिन वर्तमान क्षण में (अभ्यास के बिना) वह सभी विषयों को जानता है पर शास्त्रीय शैली में बोल नहीं सकता है। इस प्रकार से यह ज्ञानी है इसका अर्थ यह हुआ की यह अनुभवजन्य संस्कारवान है।



ध्यान दें:

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रमा



ध्यान दें:

5.5.4) प्रमा प्रमाता प्रमेय

ज्ञान का विषय ही अर्थ, पदार्थ, ज्ञेय, ज्ञातव्य, तथा प्रमेय कहलाता है यह पहले भी कहा जा चुका है। सामान्य रूप से ऐसा कहा जाता है कि दोष रहित ज्ञान ही प्रमा होता है। उस प्रकार के ज्ञान का विषय ही प्रमा का विषय होता है। प्रमा का विषय ही प्रमेय कहलाता है। प्रमेय प्रमा जिसको होते हैं वह प्रमाता कहलाता है वह प्रमाता ही ज्ञाता कहलाता है। जो-जो प्रमा के विषय होते हैं अर्थात् प्रमेय होते हैं, उनका कुछ न कुछ नाम अवश्य होता है। वह नाम ही अभिधेय कहलाता है। जिसका नाम है वह अभिधेय है और अभिधेय को ही अर्थ कहते हैं। नाम कोई पद ही होता है। अतः पद के द्वारा जो अर्थ प्रकट होता है वह ही पदार्थ कहलाता है। अर्थात् पद के द्वारा बोध्य अर्थ ही पदार्थ होता है।

अब तक लौकिक व्यवहार का सामान्य शास्त्रीय विवेचन प्रदर्शित किया गया है परन्तु वेदान्त शास्त्र में और भी भिन्न विषय है। उसका क्रम से नीचे विवरण दिया जा रहा है।

यथार्थ ज्ञान प्रमा होती है तथा अयथार्थ को अप्रमा कहते हैं अर्थात् भ्रम कहते हैं।

ज्ञान के दो प्रकार होते हैं, अनुभव तथा स्मृति। वेदान्त में स्मृति प्रमा नहीं होती है। प्रमा का भाव ही प्रमात्व कहलाता है। यह प्रमात्व स्मृति में नहीं होता है।

5.5.5) लक्षण का लक्षण

जिसका लक्षण बताया जाए वह ही लक्षण का लक्ष्य होता है। जो विषय ज्ञापनीय होता है उस विषय का कोई चिह्न अथवा लिङ्ग ज्ञापक कहलाता है। वह लिङ्ग ही लक्षण होता है। जिसका लक्ष्य होता है वह ही लक्षित तथा लक्ष्य कहलाता है। लक्षण कोई धर्म होता है। जिस धर्म में अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असम्भव ये तीन दोष नहीं होते हैं वह ही असाधारण धर्म लक्षण कहलाता है। लक्ष्य में यदि लक्षण है तो वह लक्षण समन्वय कहलाता है। लक्ष्य के एकदेश वृत्तित्व होने पर यदि लक्ष्य का अपरदेशवृत्तित्व भी हो तो वह अव्याप्ति का लक्षण होता है। जितना लक्ष्यवृत्तित्व में रहता है उतना ही यदि अलक्ष्यवृत्तित्व में हो तो वह अतिव्याप्ति का लक्षण होता है। लक्ष्यमात्रवृत्तित्व असम्भव का लक्षण होता है। इनका यहाँ पर उदाहरण सहित वर्णन किया जा रहा है।

अव्याप्ति:- लक्ष्य एक देश वृत्तित्व रहने होने पर उसी लक्ष्य का अपरदेशवृत्तित्व होना अव्याप्ति का लक्षण है। यदि गाय का कपिलत्व लक्षण करे तो कपिलत्व कपिल गायों में तो होता है पर श्वेत गायों में नहीं होता है। इसलिए लक्ष्यीभूत गायों में एकदेश में होने के कारण अपर देश में नहीं होने के कारण इस लक्षण का दोष अव्याप्ति दोष कहलाता है।

अतिव्याप्ति:- जितना लक्ष्य वृत्तित्व में होता है उतना ही यदि अलक्ष्य वृत्तित्व में हो तो वह अति व्याप्ति का लक्षण होता है। जिसके सींग हो वह गाय है तो सभी गायों को सींग है परन्तु अलक्ष्य भैंस आदि को भी सींग के भी सींग होते हैं। जितना लक्ष्य में है उतना ही गायों से भिन्न महिषादि में भी होने के कारण सींग रूपी यह लक्षण अति व्याप्ति दोष के कारण दुष्ट लक्षण कहलाता है।

असम्भव:- लक्ष्य मात्र वृत्तित्व असम्भव का लक्षण है। गाय के चारों पैरों में दो-दो खुर होते हैं। कुल मिलाकर के आठ खुर होते हैं एक गाय के। अब यदि गाय का यह लक्षण किया जाए कि जिसके एक पैर एक खुर हो वह गाय है, तब तो सभी गायों में किसी भी गाय के एक पैर में एक खुर नहीं मिलेगा। अतः लक्ष्यमात्र में अवर्तमान होना है यह लक्षण कहलाता है। अतः उसको भी असम्भव दोष के कारण दुष्ट ही मानना चाहिए।

स्वरूपं लक्षणं च- अपनी आत्मा का रूप ही स्वरूप होता है अर्थात् स्वात्मक पदार्थ होता है। जैसे घट स्वरूप द्रव्य है लक्षण में एक से अधिक पद हो सकते हैं। जैसे रूप रहित जो स्पर्श से युक्त हो वह वायु का स्वरूप है। वायु का लक्षण रूप रहित होने पर भी स्पर्श से युक्त होता है। सुन्दर तथा सुगन्ध युक्त पुष्प का स्वरूप होता है अर्थात् सुन्दरत्व होने पर भी जिसमें सुगन्धत्व हो वह पुष्प का लक्षण होता है। इस प्रकार स्वरूप तथा लक्षण इन दोनों के प्रकट करने में भेद को जानना चाहिए। गन्धवती पृथ्वी यह पृथ्वी का स्वरूप होता है। तथा गन्धवत्वम् यह पृथ्वी का लक्षण होता है। इस प्रकार से इनके उपस्थापन में वैचित्र्य को समझना चाहिए।

दलकृत्यम्- लक्षण में जितने पद होते हैं उनमें एक एक सार्थक है या नहीं इस प्रकार की परीक्षा की जाती है। तब एक एक पद को लक्षण- शरीर से हटाकर अवशिष्टांश जो लक्षण शरीर होता है उसमें क्या दोष है। इस प्रकार से परीक्षा की जाती है। यदि दोष उत्पन्न होता है तो हटाये हुए पद को लाकर के लक्षण शरीर में लगाकर के स्थित लक्षण की परीक्षा की जाती है। यदि उपस्थित दोष पद लगाने से हट जाता है तो पद सार्थक कहलाता है। इस प्रकार से परीक्षा के द्वारा पद का सार्थक्य प्रदर्शन ही पदकृत्य अथवा दलकृत्य कहलाता है।



पाठगत प्रश्न 5.3

1. अनुभव किसे कहते हैं?
2. संस्कार किसे कहते हैं?
3. स्मृति किसे कहते हैं?
4. ज्ञान का जो विषय होता है वह क्या कहलाता है?
5. किस प्रकार का अनुभव संस्कार को जन्म देता है?
6. समन्वय किसे कहते हैं?
7. असाधारण धर्म किसे कहते हैं?
8. अव्याप्ति किसे कहते हैं?
9. अतिव्याप्ति किसे कहते हैं?
10. असम्भव किसे कहते हैं?

5.5.6) उपलक्षण, उपाधि और विशेषण

वेदान्त में उपलक्षण, उपाधि तथा विशेषण इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में देखा जाता है। उपाधि किसे कहते हैं इसे पहले ही जानना चाहिए।

एक स्थान पर अलग अलग वर्ण के उत्पल (पुष्प) थे। वहाँ चैत्र नाम का कोई व्यक्ति मैत्र से उत्पल लाने के लिए 'उत्पल लाओ' ऐसा कहता है। तब उनमें से किसी भी एक उत्पल को मैत्र ले आता है। लेकिन यदि चैत्र ऐसा कहे की 'नीला उत्पल लाओ' तब मैत्र अन्य उत्पलों को छोड़कर के नीला ही उत्पल ले आता है। यहाँ लाल आदि पुष्पों से नीला पुष्प स्वयं का अलग ही बोध कराता है। यहाँ पर अलग भेद होने से यह व्यावर्तक कहलाता है। व्यावर्तक व्यावर्ति को करता है। और व्यावर्ति ही



ध्यान दें:

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रमा



ध्यान दें:

अलग भेद है।

उपलक्षण, उपाधि तथा विशेषण ये तीनों ही व्यावर्तक होते हैं।

उपलक्षण

वर्तमान होते हुए भी जिसमें व्यावर्तकत्व होता है वह उपलक्षण का लक्षण होता है। उपलक्षण लक्ष्य में नहीं होता है। परन्तु व्यावृत्ति करता है। कौओं से युक्त घर को देख। इस वाक्य में कौए उपलक्षण है। भले ही कौए घर नहीं हैं फिर भी व्यावर्तन में समर्थ है। जैसे शाखा में चन्द्र है, इस उदाहरण में शाखा में अविद्यमान होने पर भी चन्द्र को उलक्षित किया जा रहा है। इसलिए यहाँ शाखा उपलक्षण है।

विशेषण

उपाधि तथा विशेषण दोनों ही लक्ष्य में होते हैं तथा व्यावृत्ति भी करते हैं। कुछ होते हैं तब व्यावृत्ति करते हैं। अर्थात् लक्ष्य में वर्तमानत्व होने पर व्यावर्तकत्व उपाधि तथा विशेषण का साधारण लक्षण होता है। यहाँ पर भी दोनों में भेद होता है। लक्षण क्या करता है? लक्षण एक उद्देश्य के किसी विधेय का बोध कराता है। जैसे जहाँ घट का तो ज्ञान है परन्तु घट किस प्रकार है यह ज्ञात नहीं है। तब घट नीला, इस वाक्य से घट को उद्देश्य करके नीलत्व का विधान करते हैं, इसलिए घट का उद्देश्य नीलत्व ही विधेय है।

नीला घट नित्य है अथवा अनित्य जो जानता है वह उसके प्रति 'नीला घट अनित्य है' यह वाक्य बोलता है। उस घट को उद्देश्य करके उसके नीलत्व विशेषण का अनित्यत्व के रूप में विधान किया जाता है। वहाँ जैसे घट अनित्य है वैसे ही नीलत्व भी अनित्य है, इस प्रकार का भी बोध उत्पन्न होता है। नीलत्व के उद्देश्य का घट में भी अन्वय होता है। उद्देश्य जो घट है उसका नीलत्व भी अनित्य के रूप में अन्वय होता है, भले ही नीलत्व अनित्य है।

इसलिए नीलत्व के उद्देश्य में घट का अन्वय होता है। नीलत्व का स्वान्वित घट होता है। घट का विधेय अनित्यत्व है जिससे नीलत्व भी स्वान्वित घट के विधेय में अन्वित हो जाता है। अर्थात् नीलत्व स्व अन्वितांश विधेय में ही अन्वित हो जाता है। वैसे नीलत्व घट में रहता है। नीलत्व उस घट के अन्य घटों से व्यावर्तित करता है। इसलिए नीलत्व में स्वान्वितांशविधेय अन्वितत्व होने से वर्तमान में व्यावर्तकत्व होता है। इसलिए नीलत्व विशेषण होता है यह ही विशेषण का लक्षण है।

“ स्वान्वितांशविधेयान्वयित्वे सति वर्तमानत्वे सति व्यावर्तकत्वम् इति विशेषणस्य लक्षणम्।”

उपाधि

कर्णशष्कुल्यच्छिन्नं नभः श्रोत्रम् (शष्कुली से तात्पर्य कर्ण के छिद्र है। और नभः से तात्पर्य आकाश है। इसलिए कर्ण का छिद्र और आकाश इन दोनों से तात्पर्य रूप में कान होते हैं) इस वाक्य में श्रोत्रत्व विधेय तथा नभः उद्देश्य के रूप में जाना जाता है। वहाँ कर्णशष्कुली उपलक्षण है विशेषण है अथवा उपाधि है इनका विचार करते हैं। सम्पूर्ण आकाश श्रोत्र नहीं है लेकिन कर्णविवर के द्वारा जिसे जाना जाता है वह आकाश श्रोत्र कहलाता है। जैसे घटाकाश, मठाकाश इत्यादि प्रयोगों के द्वारा एक ही आकाश घटसम्बन्धवश अथवा मठसम्बन्धवश भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। वैसे कर्णशष्कुली भी अन्य आकाश से शष्कुली सम्बन्ध आकाश को अलग बोध कराती है अर्थात् व्यावर्तन करती है। अतः यहाँ पर कर्णशष्कुली व्यावर्तन करती है। इस प्रकार से केवल व्यावृत्त आकाश ही श्रोत्र है। कर्णशष्कुली श्रोत्र नहीं है। इसलिए विधेय श्रोत्रत्व में तो आकाश का अन्वय (सम्बन्ध) है लेकिन कर्णविवर का अन्वय नहीं

है। कर्णशष्कुली श्रोत्र नहीं है।

सम्पूर्ण आकाश श्रोत्र नहीं है। क्योंकि कर्णविवर द्वारा यह जाना जाता है कि वह आकाश श्रोत्र है। जैसे घटाकाश तथा मठाकाश इस प्रयोग से एक ही आकाश घट सम्बन्धवशात् तथा मठसम्बन्धवशात् भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। वैसे ही कर्णशष्कुली भी अन्य आकाश से शष्कुली सम्बन्ध आकाश को अलग करके बोध कराती है, व्यावर्तन करती है। अतः कर्णशष्कुली व्यावर्तन करती है। और केवल व्यावृत्त आकाश ही श्रोत्र होता है, कर्णशष्कुली श्रोत्र नहीं होती है। अथः विधेय श्रोत्रत्व में आकाश का अन्वय (सम्बन्ध) है। लेकिन कर्णविवर का अन्वय नहीं है। अर्थात् कर्णशष्कुली श्रोत्र नहीं है। इसलिए वह कर्णशष्कुली है। कर्णशष्कुली वर्तमान में होती हुई उसके द्वारा सम्बन्धित आकाश का अन्य आकाश से व्यावर्त कराती है। आकाश व्यावर्तन करके श्रोत्रत्व को सम्बन्ध योग्य करता है। लेकिन स्वयं का जो आकाश से सम्बन्ध होता है उसमें आकाश में जो विधेय श्रोत्रत्व होता है उसमें अन्वित नहीं होता है। अतः कर्णशष्कुली आकाश के विधेय में अनन्विता है, लेकिन वर्तमान होने के कारण आकाश की आकाशान्तर से व्यावर्तिका भी है। इसलिए कर्णशष्कुली आकाश की उपाधि होती है न की विशेषण। इसलिए कहा गया है स्वान्वितांशविधेयानन्वयित्वे सति वर्तमानत्वे सति व्यावर्तकत्वम् इति उपाधेः लक्षणम्।

यह ही उपाधि तथा विशेषण में भेद होता है कि जिसका व्यावर्तन करने पर उसका विधेय में विशेषण रूप से अन्वय होता है न की उपाधि में अन्वय होता है। दोनों में वर्तमानत्व होने के कारण व्यावर्तकत्व होता है। जिसको सरल भाषा में ऐसे कहा जाता है कि विशेषण ही कार्यान्वयी वर्तमान का व्यावर्तक होता है।

पण्डित का पुत्र मूर्ख है, इस उदाहरण में विधेय मूर्खत्व है तथा उद्देश्य पुत्र है। पण्डित का पुत्र। अतः पण्डित का अपने पुत्र में पुत्रत्व सम्बन्ध से अन्वय होता है। पुत्र का मूर्खत्व से अन्वय होता है। लेकिन पण्डित का मूर्खत्व से अन्वय नहीं होता है। पण्डित मूर्ख नहीं है, पुत्र ही मूर्खत्व का हेतु है। इसलिए स्वविशेष्य के विधेय में पण्डित मूर्खत्व रहित होता है। इसलिए पण्डित यहाँ पर उपाधि है।

घट तथा पट को देखो, यहाँ पर घट का पट में अन्वय है।

और पट की विधेया जो दर्शनक्रिया है उसमें घट का अन्वय होता है। क्योंकि घट भी दर्शन का विषय है। घट वहाँ पर वर्तमान है। इसलिए घट में वर्तमानत्व है। स्वान्वित जो पट है उसका विधेय में अन्वित्व होने के कारण भी वह घट का है। घट पट का व्यावर्तक नहीं है। इसलिए यदि लक्षण में व्यावर्तक पद नहीं होता तो घट पट का विशेषण होता यह आपत्ति यहाँ उपस्थित होते। इसलिए लक्षण में व्यावर्तकत्व को जोड़ा है।

आपने क्या सीखा

- दर्शन क्या है इस विषय में ज्ञान प्राप्ति,
- दर्शनों के भेद तथा उनके प्रयोजनों को जानने में समझ विकसित करना,
- पुरुषार्थ को जानकर अपना जीवन व्यतीत करने का तरीका,
- प्रमाणों के पदार्थ को जानकर प्रमाण की महिमा की समझ,
- अद्वैत वेदान्त के मत में प्रत्यक्ष प्रमाण।



ध्यान दें:



पाठगत प्रश्न 5.4



ध्यान दें:

1. व्यावर्तक कितने होते हैं?
2. उपलक्षण का लक्षण क्या है?
3. विशेषण का लक्षण क्या है?
4. उपाधि का क्या लक्षण है?
5. पण्डित का पुत्र मूर्ख है, इस उदाहरण में पण्डित उपाधि, उपलक्षण अथवा विशेषण है?
6. कर्णशष्कुली आकाश की उपाधि है अथवा विशेषण?
7. नीलघट अनित्य है इस उदाहरण में नीलत्व उपाधि है अथवा विशेषण?

5.6) प्रमा

प्रमा का करण प्रमाण होता है तो कहते हैं कि प्रमा क्या है? इस प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। वस्तुतः ज्ञान ही प्रमा होता है, इसलिए ज्ञानत्व ही प्रमा का लक्षण है। वहाँ क्या दोष है, तो इसका प्रदर्शन किया जा रहा है।

राहु का शिर यह प्रसिद्ध वाक्य है। यहाँ पर राहु का शिर यह भेद प्रकट होता है। लेकिन इन दोनों में कोई भेद नहीं होता है। वस्तुतः सिर ही राहु है और राहु ही सिर है। उन दोनों में भेद नहीं है। फिर भी यह वाक् व्यवहार संसार में होता है। इस व्यवहार का तिरस्कार नहीं कर सकते। इस वाक्य से ज्ञान ही उत्पन्न होता है। इस ज्ञान में जो बताया गया है वह भेद भले ही अलीक(झूठा), अप्रसिद्ध पदार्थ, तथा इसका अन्वय केवलान्वयी है फिर भी ज्ञान तो होता ही है। भले ही ज्ञान का कोई भी विषय नहीं है फिर भी ज्ञान अङ्गीकार करना चाहिए। यह ज्ञान ही योगशास्त्र में विकल्प ज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान प्रमा नहीं है। अभी जिस विषय में ज्ञान उत्पन्न होता है वह विषय यदि बाद में बाधित हो जाता है तो वह ज्ञान भ्रम कहलाता है, जैसे मद में अन्धे को रस्सी में साँप दिखाई देता है। लेकिन प्रकाश आने पर रस्सी में रज्जुत्व का ही ग्रहण होता है न की सर्प का। इसलिए रस्सी में सर्प का ज्ञान भ्रम ही है। राहु का शिर यहाँ पर भी भेद का ज्ञान जब होता है तब भी भेद झूठा होता है, वह बाधित होता हुआ भी ज्ञान कहलाता है। अतः बाधित होने पर तथा बोध होने पर उत्पन्न ज्ञान भ्रम नहीं होता है। यह सत्य है कि राहु का शिर है इसमें किसी की भी विमति नहीं है और न किसी का वि संवाद है। इसलिए ही वह ज्ञान भ्रम भिन्न प्रमा भिन्न तृतीय ज्ञान के रूप में अङ्गीकृत करना चाहिए।

इसलिए ज्ञानत्व ही यदि प्रमा का लक्षण हो तो उक्त प्रकार से राहु का शिर भी इस अर्थ शून्य ज्ञान में ज्ञानत्व है। परन्तु उससे इस ज्ञान में प्रमा के लक्षण की अति व्याप्ति हो जाती है। इसलिए “अर्थ विषयक ज्ञानत्वम् प्रमायाः लक्षणम्” इस प्रकार से किया जाता है। जिसका अर्थ है वस्तु विषय उसका अर्थ विषयक ज्ञान होता है, विकल्प ज्ञान अर्थ विषयक ज्ञान नहीं होता है। वह तो अर्थ शून्य ज्ञान होता है और मिथ्या ज्ञान वस्तुभूत का ज्ञान नहीं होता है, इस विकल्प के ज्ञान में इस प्रमा के लक्षण में अतिव्याप्ति नहीं होती है।

रस्सी में सर्पत्व ग्रहण से तथा शुक्ति में चांदी के ग्रहण आदि उदाहरणों में जो ज्ञान होता है, उसका

कोई विषय तो होता ही है। यह निर्विषयक अथवा अर्थ शून्य ज्ञान नहीं है। इस ज्ञान के विषय सर्पत्व रजत्व आदि आगे बाधित होते हैं। इसलिए यह ज्ञान भ्रम कहलाता है। यह ज्ञान अर्थ विषयक होता है। इस ज्ञान में अर्थ विषयक ज्ञानत्व के सत्व से प्रमाल क्षण की अतिव्याप्ति होती है। इसलिए 'अबाधितार्थ विषयक ज्ञानत्व प्रमायाः लक्षणम्' प्रमा का लक्षण किया जाता है। रस्सी में सर्पत्व तथा शुक्ति में रजत्व बाधित होते हैं। इसलिए वह ज्ञान बाधितार्थ विषयक ज्ञान होता है। उस ज्ञान में अबाधितार्थ विषयक ज्ञानत्व नहीं होता है। इसलिए इस प्रमाल क्षण की वहाँ अति व्याप्ति नहीं होती है।

घट का अनुभव होता है। उससे संस्कार उत्पन्न होते हैं। पर कभी वे संस्कार उत्पन्न होकर के स्मृति को जन्म देते हैं। यहाँ पर जो स्मृति है वह उसका विषय घट है। वह घट बाधित नहीं होता है। जब तक घट बाधित नहीं होता है तब तक घट घटत्व रूप में ही प्रतीत होता है। इसलिए घट का बाध नहीं होता है। स्मृति विषयक घट बाधित नहीं होता है अतः अबाधित अर्थ ही घट कहलाता है। उसका विषय स्मृति होता है। और स्मृति ही ज्ञान होती है। यह ज्ञान अबाधितार्थविषयक होता है इसलिए अबाधितार्थ विषयक ज्ञानत्व वहाँ सत्व से प्रमाल क्षण की अति व्याप्ति होती है। अतिव्याप्ति के निराकरण के लिए लक्षण का परिष्कार आवश्यक है। इसलिए नया लक्षण प्रस्तुत किया जाता है वह है- अनधिगताबाधितार्थ विषयक ज्ञानत्व प्रमायाः लक्षणम्। जो अर्थ पूर्व में नहीं ज्ञात था तथा अधिगत भी नहीं था वह अनधिगत अर्थ कहलाता है। तथा जो अर्थ बाधित नहीं है वह अबाधित कहलाता है। अनधिगतार्थ विषयक तथा अबाधितार्थ विषयक ज्ञान होता है। स्मृतिविषय घटादि तो पूर्व में अनुभूत ही है अर्थात् घट की स्मृति पहले ही अनुभव के माध्यमे से अधिगत है। जिसका पूर्व में अनुभव नहीं होता है उसकी स्मृति नहीं होती है। इसलिए स्मृति विषयक ज्ञान अधिगत ज्ञान होता है अनधिगत नहीं। अतः स्मृति में अनधिगतबाधितार्थ विषयक ज्ञानत्व के असत्व से अतिव्याप्ति नहीं है। स्मृति में ज्ञानत्व होता है वह अर्थ विषयक तथा अबाधितार्थ विषयक ज्ञानत्व है लेकिन अनधिगतार्थविषयक ज्ञानत्व नहीं है, इस प्रकार से यहाँ अति व्याप्ति नहीं होती है। इसलिए अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भवरूप इन तीनों दूषणों से रहित यह लक्ष्य प्रमा का असाधारण धर्म भी है इसलिए अनधिगताबाधितार्थविषयकज्ञानत्व प्रमायाः लक्षणम् यह सिद्ध होता है।

किन्हीं के मत में स्मृति भी प्रमा ही होती है। तब उक्त प्रमा के लक्षण की स्मृति में अव्याप्ति होती है। स्मृति में अबाधितार्थविषयकज्ञानत्व से सत्व में भी अनधिगतार्थविषयकज्ञानत्व की अविद्यमानता से अव्याप्ति होती है। इसलिए अव्याप्ति निवारण के लिए अबाधितार्थविषयज्ञानत्व प्रमा का लक्षण किया जाता है। यह साधारण स्मृति का लक्षण है। स्मृति विषय अनुभव से अधिगत होता है, लेकिन यदि बाधित नहीं है तो तादृशार्थविषयक ज्ञान तो अबाधितार्थविषयक ज्ञान ही कहलाता है। इसलिए स्मृति में अबाधितार्थ विषयक ज्ञानत्व के सत्व से अव्याप्ति नहीं होती है।

सभी शास्त्र स्वसिद्धान्त के अनुकूलत्व से प्रमेय उपस्थापन करते हैं। इसलिए अनुभूय मान जगत के ही विभिन्न पदार्थों का तथा नामों के द्वारा विभिन्न लक्षणों के द्वारा प्रतिपादन किया गया है। शास्त्रों में बहुत जगह इसके विरोध भी परिलक्षित होते हैं। जब कोई भी शास्त्र कुछ सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं तब उसमें बहुत से दार्शनिक आक्षेपादि करते हैं। अतः उसके समाधान के लिए सिद्धान्तियों के प्रयासों का विधान किया गया है। वहाँ पर सभी की सम्मति तथा परार्थानुमानपद्धति का अवलम्बन लिया जाता है।



ध्यान दें:

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रमा

नैयायिक आक्षेप-1 समाधि



ध्यान दें:

न्याय के मत में सभी प्रकार का ज्ञान क्षणिक होता है अर्थात् एक क्षण स्थायी होता है। धारावाहिक ज्ञान में न्याय के मत में पहला दूसरा तीसरा इस प्रकार की ज्ञान की प्रमा होती है। परन्तु द्वितीय तथा तृतीय इत्यादि ज्ञान भी प्रमा कहलाते हैं। लेकिन द्वितीय तृतीय ज्ञानादि में उक्त लक्षण की अव्याप्ति रहती है। इसलिए धारावाहिक ज्ञान का निरन्तर घट के समान ही ज्ञान का विषय होता है। अर्थात् प्रथम क्षण में द्वितीय क्षण में तथा तृतीय क्षण में घट समान ही दिखाई देता है। तब प्रथम क्षण में ज्ञात अधिगत घट ही द्वितीय क्षण में ज्ञान का विषय होता है। इसी प्रकार प्रथम क्षण में तथा द्वितीय क्षण में ज्ञात अधिगत घट ही तृतीय क्षण में ज्ञान का विषय होता है। प्रथम क्षण में जो घट का ज्ञान होता है उसी क्षण में वह प्रमा का लक्षण भी होता है। लेकिन द्वितीय क्षण में जो ज्ञान होता है वहाँ अव्याप्ति होती है। क्योंकि द्वितीय क्षण में ज्ञान का विषय घट अनधिगत नहीं होता है। अतः द्वितीय तृतीयादि ज्ञानों में अनधिगतार्थ विषयकत्व नहीं होता है केवल अबाधितार्थ विषयकत्व होता है। इसलिए लक्षण में अव्याप्ति होती है यह आक्षेप किया जाता है।

विशेषण के भेद से विशिष्ट में भी भेद होता है। अर्थात् गतिमान जन, यहाँ ज्ञान में गति विशेषण है तथा विशेष्य जन है। जब वह व्यक्ति गति का विराम करता है तब रुका हुआ वह व्यक्ति इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। उसमें रूकी हुई स्थिति तो विशेषण है तथा जन विशेष्य। गतिमान जन तथा रूका हुआ जन, इन दोनों जगह विशेषण भिन्न-भिन्न है। विशेष्य वह व्यक्ति ही है फिर भी विशेषण भिन्न-भिन्न है। इसलिए सभी व्यक्तियों के द्वारा अलग अलग विषय ही गिने जाते हैं।

अभी में घट को देखता हूँ। इसमें केवल घट ही भासित नहीं हो रहा है अपितु काल भी भासित हो रहा है। यदि काल भासित नहीं होता तो काल ज्ञान का विषय नहीं होता। तो एतत्कालवृत्तिघटविषयक ज्ञान वाला "मैं" अनुव्यवसाय रूप में समय विशेषणत्व से प्रतीत नहीं होता है। (प्रथम ज्ञान का ज्ञान अनुव्यवसाय कहलाता है तथा ज्ञानविषयक ज्ञान भी अनुव्यवसाय क ज्ञान कहलाता है) और घट में वर्तमान है या नहीं यहाँ घट में स्थित काल का नहीं होता है परन्तु घट का वर्तमानत्व तो ज्ञात होता ही है। क्रिया के काल के विषय में किसी का सन्देह ही नहीं है। इसलिए काल भी ज्ञान रूप में भासित होता है इस प्रकार से सभी को समझना चाहिए। जिस किसी भी इन्द्रिय से जब ज्ञान होता है तब अभी में यह अनुभव करता हूँ इस प्रकार का ज्ञान होता है। इसलिए सभी इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य है।

इसलिए धारावाहिक के ज्ञान में प्रथम क्षण विशिष्ट घट ही प्रथम ज्ञान का विषय है। तब द्वितीय क्षण में नहीं होता है। इसलिए प्रथम ज्ञान द्वितीय क्षण में भासित नहीं होता है। तथा तृतीय क्षण में भी भासित नहीं होता है। द्वितीयज्ञान में द्वितीयक्षण विशिष्ट घट का ज्ञान होता है तब तृतीय क्षण नहीं होता है। तब उसमें तृतीयादि क्षण भासित नहीं होते हैं। प्रथम ज्ञान में प्रथम क्षण विशेषण होता है द्वितीय क्षण विशेषण नहीं होता है। द्वितीय ज्ञान में द्वितीय क्षण विशेषण होता है प्रथम क्षण विशेषण नहीं होता है। इसलिए प्रथम का विषय द्वितीय ज्ञान के विषय से भिन्न ही होता है और द्वितीय ज्ञान का विषय प्रथम ज्ञान के विषय से भिन्न होता है। प्रतिक्षण उसक्षण विशिष्ट घट का अर्थ अनधिगत ही है न की अधिगत। इस प्रकार से धारावाहिक ज्ञान में भी प्रतिक्षण विषय अनधिगत रहता है। इसलिए अनधिगतार्थविषयकत्व तथा अबाधितार्थविषयकत्व ज्ञान में होता है यहाँ अव्याप्ति नहीं है यह प्रथम समाधान हुआ।

दूसरा समाधान तो मधुसूदन सरस्वती ने किया ही है। धारावाहिक ज्ञान के स्थल में द्वितीयादि ज्ञान ज्ञात के अर्थ का ज्ञापक मात्र ही होता है। अतः वह अनुवाद मात्र ही है। न की अज्ञात ज्ञापक। अतः अनुवाद में प्रमात्व प्रयोजक अज्ञात ज्ञापकत्व नहीं है। इस प्रकार से द्वितीयादिज्ञान प्रमा नहीं है, इसलिए वहाँ लक्षण का आगमन उपयुक्त ही है .

नैयायिकों का आक्षेप 2 तत्समाधि

शुक्ति में रजत के रूप में भान तथा रज्जु में सर्प का भान तो जगत में प्रसिद्ध ही है। शुक्ति का अज्ञानावृत अंश रज तत्व के रूप में प्रतीत होता है। रज्जु का अज्ञानावृत अंश सर्पत्व रूप में प्रतीत होता है। इसी प्रकार ब्रह्म के अज्ञानावृत अंश को बद्ध पुरुष घट पटादि के रूप में ग्रहण करता है। इसलिए जैसे सर्पादिक मिथ्या है वैसे ही यह परिदृश्यमान जगत् भी मिथ्या है। शुक्तित्व के साक्षात्कार से रजतत्व का विलोप हो जाता है। उसी प्रकार अच्छे प्रकाश में रज्जु के साक्षात्कार से सर्पत्व का विलोप हो जाता है। रजतत्वादि बाधित हो जाते हैं। जैसे श्रवण मननादि के द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार में 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छा. उ. 3.14.1) इस प्रकार का ज्ञान होता है। घटादिक बाधित होते हैं। तब ब्रह्म चैतन्य रूप में प्रकाशित होता है। तब अन्य वस्तु नहीं होती है। यह वेदान्त का सिद्धान्त है।

इस सिद्धान्त का आश्रय लेकर वेदान्ति आक्षेप करते हैं कि वेदान्त मत में घटादिक मिथ्या होते हैं अर्थात् ब्रह्मज्ञान बाधित होता है। इसलिए घट ज्ञान तो बाधितार्थ विषयक ज्ञान है। अतः घटादि विषयक ज्ञान भले ही अनधिगतार्थ विषयक हो फिर भी अबाधितार्थ विषयक नहीं होते हैं। इसलिए घटादि विषयक ज्ञान में प्रमालक्षण की अव्याप्ति होती है।

तब सिद्धान्ती जन समाधान करते हैं- सत्य है। लेकिन जो अबाधितार्थविषयक ज्ञान यहाँ संसार दशा में अबाधितार्थ इसका अर्थ तात्पर्य है। घटादिक संसार के समय में किसी को भी बाधित नहीं होता है, ब्रह्मसाक्षात्कार के बाद ही बाधित होता है। अतः इस लक्षण में कोई दोष नहीं है। स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए यह कह सकते हैं कि अनधिगतार्थविषयक ज्ञान तथा संसार दशा में जो अबाधितार्थ तद्विषयक ज्ञान होता है वह ही प्रमा है।

जैसे चन्द्र एक ही होता है फिर भी नेत्रदोष वश किसी को दो चन्द्रमा भी दिखाई देते हैं। जहाँ चन्द्र में भेद नहीं होता है वहा नेत्र दोष के कारण भेद का अनुभव होता है।

ब्रह्मसाक्षात्कार के बाद भी घटादि का बाध होता है। वहाँ पर श्रुति का यह प्रमाण होता है- यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येद् इत्यादि। (जब ब्रह्मज्ञ पुरुष का समस्त प्रपञ्च ब्रह्म रूप होता है तब किस इन्द्रिय से किस विषय को देखें। अर्थात् जहाँ रज्जु में सर्पत्व का भास होता है वहाँ रज्जु दर्शन से सर्पत्वादि नहीं दिखाई देते हैं। तब संसार दशा में ब्रह्मा में जगत् का भास होता है। लेकिन ब्रह्मदर्शन से जगत् नहीं दिखाई देता है।)

संसार दशा में घटादि का बाध नहीं होता है। वहाँ पर श्रुति का प्रमाण है- यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति इति।

(जब वस्तुतः द्वैत नहीं होता है फिर भी अज्ञानवश द्वैत जैसे कल्पित भेद होते हैं। तब ब्रह्म भिन्न जीव भी जगत् कर्तृकर्मकारक फलादि रूपों में भिन्न ही दिखाई देता है।

इस प्रकार से प्रमालक्षण का यहाँ पूर्ण रूप आलोचन किया है।

[विमर्श- अनधिगतार्थविषयकज्ञानत्व से विशेषण की स्मृति में अतिव्याप्ति निवारण के लिए अबाधितार्थविषयकज्ञानत्व इस विशेषण भ्रम में अतिव्याप्ति के निवारण के लिए यहाँ पर आलोचित (वर्णन दिया गया) की गई है। वेदान्त मत में तो अज्ञान का निवर्तक ही ज्ञान होता है। इसलिए स्मृति तथा भ्रम अज्ञान का निवारण नहीं करते हैं। अतः स्मृति तथा भ्रम में ज्ञानत्व नहीं होता है। और न प्रमाण वृत्ति होती है। अद्वैत मत में प्रमा का लक्षण तो अज्ञातार्थ विषयक निश्चयत्व रूप में होता है]



ध्यान दें:



ध्यान दें:



पाठगत प्रश्न-5.5

1. राहु का सर यहां पर ज्ञान का विषय क्या है?
2. प्रमा का परिष्कृत लक्षण क्या है?
3. जिनके मत में स्मृति भी प्रमा है उनके मत में प्रमा का क्या लक्षण है?
4. ज्ञान क्षणिक होता है यह किनके मत है?
5. विशेषण के भेद से विशिष्ट में भेद होता है या नहीं?
6. अभी घट देखता हूँ इस ज्ञान में काल भी भासित होता है या नहीं?



पाठ सार

यह प्रमा का प्रकरण है और प्रमा के प्रकरण का यहा प्रथम पाठ है। प्रमाण के आलोचन के लिए बहुत पारिभाषिक पदों का ज्ञान आवश्यक है। उन पदों का जैसा उपास्थापन यहाँ दिया गया है वैसा उपास्थापन अन्य पाठों में नहीं है। इसलिए इन प्रमाणों के प्रथम पाठ में उस प्रकार के बहुलता से संकलित किया गया है।

दर्शन शब्द, तथा जो ल्युट् प्रत्यय है उसके विभिन्न अर्थों को लेकर दर्शन शब्द का प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय और प्रमा इस प्रकार के जो चार अर्थ होते हैं उनका यहाँ आलोचन किया गया है। शास्त्र क्या होता है। जो मनुष्य की नित्य की प्रवृत्ति का उपदेश देता है, विधान करता है, और अनित्य में निवृत्ति का उपदेश देता है वह शास्त्र कहलाता है।

दर्शन बहुत प्रकार के हैं। दर्शनों के आस्तिक तथा नास्तिक भेद के द्वारा विवरण इस पाठ में प्रस्तुत किया गया है। दर्शन भेद से प्रमाण भेद भी परिलक्षित होता है। इसलिए किस दर्शन के कितने प्रमाण होते हैं इस विषय का भी इस पाठ में संक्षेप से प्रतिपादन किया गया है।

पुरुषार्थ परक पुरुष होता है। धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष ये पुरुषार्थ होते हैं। धर्म तथा अर्थ गौण होते हैं तथा काम और मोक्ष मुख्य होते हैं। काम अनित्य है तथा मोक्ष नित्य है। अतः मोक्ष परम पुरुषार्थ है और वह ब्रह्मज्ञान से होता है।

ज्ञान क्या है? इस विषय में व्यवहार है या भ्रान्ति इसका पूर्ण रूप से तथा शास्त्रों में ज्ञान क्या है? इसका भी पूर्ण रूप से इस पाठ में प्रतिपादन किया गया है। अनुभव तथा स्मृति भेद से ज्ञान दो प्रकार का होता है। जिसमें अनुभव संस्कार को जन्म देता है, तथा संस्कार उत्पन्न होकर स्मृति को जन्म देता है।

किसी भी पदार्थ का परिचय उसके लक्षण से होता है। और लक्षण असाधारण धर्म होता है। लक्षण मे अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असम्भव इस प्रकार से जो तीन दोष होते हैं उनका भी इस पाठ में उल्लेख किया गया है।

वेदान्त में उपलक्षण, उपाधि तथा विशेषण इन शब्दों का प्रयोग प्राचुर्य मात्रा है अतः इनका सविस्तार पूर्वक आलोचन यहाँ दिया गया है।

प्रमा स्थान से तथा वस्तु से इस विषय को आरम्भ किया गया है। इससे पहले सब कुछ प्रस्तुत

था। अनधिकगताबाधितार्थविषयकज्ञानत्व प्रमा का लक्षण है, यह भी प्रतिपादित किया गया। जो अर्थ पूर्व में ज्ञान नहीं था, और न अधिगत है तथा अनधिगत भी नहीं है। लेकिन जो अर्थ बाधित नहीं है वह अबाधित अर्थ है। अनधिगतार्थविषयक और अबाधितार्थविषयक ज्ञान होता है। अनधिगतार्थविषयकज्ञान तथा तत्व प्रमा का लक्षण होता है। इस प्रकार से सरलार्थ विषयक ज्ञान का वर्णन तथा दल कृत्य का वर्णन भी यहां प्रदर्शित किया गया है। इस लक्षण में जो दोष या आक्षेप है उनका भी निवारण प्रदर्शित किया गया है।



पाठान्त प्रश्न 5.1

1. दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति भेद से अर्थ भेद की उपस्थापना कीजिए।
2. शास्त्र क्या होता है?
3. दर्शन के भेद को प्रकट कीजिए।
4. किस दर्शन के कितने प्रमाण होते हैं यह लिखिए।
5. पुरुषार्थ का युक्ति पूर्वक विवरण लिखिए।
6. पुरुषार्थ का वर्णन करके मोक्ष के परमत्व का प्रतिपादन कीजिए।
7. पदार्थ किसे कहते हैं?
8. सामान्य रूप से ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है?
9. लक्षण के लक्षण का वर्णन कीजिए।
10. लक्षण तथा लक्षण के दोषों में कौन-कौन होते हैं? इनका उदाहरण सहित प्रतिपादन कीजिए।
11. दलकृत्य क्या होता है?
12. उपाधिलक्षण में व्यावर्तकत्व के सार्थक्य का प्रतिपादन कीजिए।
13. उपलक्षण का लक्षण देकर उसका प्रतिपादन कीजिए।
14. विशेषण लक्षण का प्रतिपादन कीजिए।
15. उपाधिलक्षण का प्रतिपादन कीजिए।
16. उपाधि तथा विशेषण में क्या भेद होते हैं?
17. प्रमा के लक्षण का दलकृत्य करके परिष्कार कीजिए।
18. काल ज्ञान में भासित होता है इसका युक्ति पूर्वक प्रतिपादन कीजिए।
19. धारवाहिक के ज्ञान में प्रतिक्षण विषय किस प्रकार से अनधिगत होता है?



ध्यान दें:



ध्यान दें:



पाठगत प्रश्नों का उत्तर 5.1

1. दृशिः प्रेक्षणे इति धातु से ल्युट्-प्रत्यय का योग करने पर दर्शन शब्द निष्पादित होता है।
2. 3.
3. 4.
4. 1.
5. 4.
6. 2.
7. 1. ग 2. घ 3. ख 4. क 5. च 6. ङ्



पाठगत प्रश्नों का उत्तर 5.2

1. सुख
2. दुःख
3. नित्य तथा अनित्य भेद से सुख दो प्रकार को होता है
4. आत्मसुख
5. जन्य सुख नित्य होता है
6. धर्म अथवा पुण्य
7. अधर्म या पाप
8. 'इदंमदिष्टसाधनम्' ज्ञान की प्रवृत्ति के कारण होते हैं।
9. जिसका अर्थ किया जाए वह अर्थ होता है। पुरुष का अर्थ ही पुरुषार्थ होता है अर्थात् पुरुष के द्वारा जो प्राप्त किया जाए वह पुरुषार्थ होता है। अथवा पुरुष या नारी जो कुछ भी इच्छा करते या कामना करते हैं वह पुरुषार्थ होता है।
10. धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चार पुरुषार्थ होते हैं।
11. धर्म तथा अर्थ गौण पुरुषार्थ माने जाते हैं। काम तथा मोक्ष मुख्य पुरुषार्थ माने जाते हैं।
12. नित्यत्व।
13. मोक्ष ब्रह्मज्ञान से होता है।



पाठगत प्रश्नों का उत्तर 5.3

1. स्मृति भिन्न ज्ञान ही अनुभव कहलाता है।
2. अनुभव अपेक्षा बुद्धिवश अन्तःकरण में गुणों का उत्पादन करता है जो उद्बोधक सहकार के साथ स्मृति को जन्म देते हैं वह गुण ही संस्कार कहलाते हैं। अनुभव जन्य स्मृति का हेतु संस्कार कहलाता है।
3. बाह्य इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह केवल संस्कार होता है और संस्कार ही उत्पन्न होकर जो ज्ञान जिस ज्ञान को जन्म देता है वह ज्ञान ही स्मृति कहलाता है।
4. ज्ञान का जो विषय होता है वह ही अर्थ पदार्थ, ज्ञेय, ज्ञातव्य तथा प्रमेय कहलाता है।
5. अपेक्षा बुद्धि ही अनुभव तथा संस्कार को जन्म देती है।
6. लक्ष्य में जो लक्षण होता है तो वह लक्षण समन्वय कहलाता है।
7. जिस धर्म में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, तथा असम्भव ये तीन दोष नहीं हो वह ही असाधारण धर्म कहलाता है।
8. लक्ष्य का एकदेशवृत्तित्व होने पर उसी लक्ष्य का अपरदेशवृत्तित्व होना अव्याप्ति का लक्षण होता है।
9. जितना लक्ष्य लक्ष्यवृत्तित्व में होता है उतना ही लक्ष्य यदि अलक्ष्यवृत्तित्व में तो वह अतिव्याप्ति का लक्षण होता है।
10. लक्ष्य मात्र वृत्तित्व असम्भव का लक्षण होता है।



पाठगत प्रश्नों का उत्तर 5.4

1. उपलक्षण, उपाधि तथा विशेषण ये तीनों व्यावर्तक कहलाते हैं।
2. अन्व्यावर्तकत्व होने पर भी जिसमें व्यावर्तकत्व हो वह उपलक्षण का लक्षण है।
3. स्वान्वितांशविधेयान्वयित्व होते हुए वर्तमान में जो व्यावर्तकत्व हो, यह विशेषण का लक्षण है।
4. स्वान्वितांशविधेयान्वयित्व होते हुए वर्तमान में जो व्यावर्तकत्व हो, यह उपाधि का लक्षण है।
5. उपाधि:
6. उपाधि
7. विशेषण



ध्यान दें:



पाठगत प्रश्नों का उत्तर 5.5



ध्यान दें:

1. राहु का सिर यहाँ पर राहु तथा सिर में भेद जो है वह अप्रसिद्ध पदार्थ कहलाता है।
2. अनधिगतबाधितार्थविषयकज्ञानत्व प्रमा का लक्षण होता है।
3. अबाधितार्थविषयकज्ञानत्व प्रमा का लक्षण होता है।
4. न्याय का मत।
5. भिद्यते।
6. भासित होता है।